पुरुषार्थ चतुष्टय

डॉ० उमेश चंद्र त्रिपाठी [1]

Abstract (सारांश)

सनातन संस्कृति में 'पुरुषार्थ' मानव जीवन के उद्देश्य और दिशा का प्रतिपादन करता है। यह केवल भौतिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति तक सीमित न होकर व्यक्ति के संपूर्ण जीवन-व्यवहार, आचार तथा सामाजिक उत्तरदायित्व से जुड़ा हुआ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों के माध्यम से मानव जीवन की पूर्णता प्राप्त होती है। प्रस्तुत लेख में पुरुषार्थ की दार्शनिक, शास्त्रीय तथा साहित्यिक अवधारणा का विश्लेषण किया गया है, जिसमें प्राचीन ग्रंथों, महाकाव्यों तथा आधुनिक विचारकों के दृष्टिकोण को समाहित किया गया है।

Keywords (मुख्य शब्द)

पुरुषार्थ, पुरुषार्थ चतुष्ठय, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सनातन संस्कृति, भारतीय दर्शन

1.Introduction (परिचय)

पुरुषार्थ का शाब्दिक अर्थ है—'पुरुष द्वारा किया गया सही दिशा में अर्थपूर्ण प्रयास'। यहाँ 'पुरुष' का आशय केवल शारीरिक मनुष्य से नहीं, बल्कि विवेक-संपन्न मानव से है | भारतीय दर्शन परंपरा में चार्वाक दर्शन को छोड़कर प्रायः सभी दर्शनों ने पुरुषार्थ चतुष्ठय को स्वीकार किया है। चार्वाक दर्शन केवल अर्थ और काम को ही पुरुषार्थ मानता है, अर्थात् यह 'पुरुषार्थ-द्वय' का समर्थक है। नास्तिक दर्शन होने के कारण धर्म और मोक्ष उसके विवेच्य विषय नहीं हैं।

[1] केंद्रीय विद्यालय, मोतिहारी (से०नि०)

महाभारत, रामायण, गीता, उपनिषद् तथा *कामसूत्र* जैसे प्राचीन ग्रंथों में पुरुषार्थ की महत्ता का प्रतिपादन मिलता है। वेदव्यास के अनुसार पुरुषार्थ और दैव के संयोग से ही सफलता प्राप्त होती है: "*क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीजमुदाहृतम्। क्षेत्रबीजसमायोगात् ततः सत्यं समृद्धयते।*" [2] महर्षि वेदव्यास व्यावहारिक जीवन में भी पुरुषार्थ के महत्व को स्वीकार करते हैं : *"कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।"* उनके दाहिने हाथ में पुरुषार्थ और बायें में सफलता होती थी। उनकी दृष्टि में संकट की घड़ी में यथोचित निर्णय लेने वाला ही सच्चा पुरुषार्थी है।

योगवाशिष्ठ के अनुसार शास्त्रानुसार चित्त-विचरण ही सज्जन पुरुष का पुरुषार्थ है। यदि जीवन में पुरुषार्थ है तो संपन्नता बनी रहती है और दरिद्रता द्वार से लौट जाती है। *पुरुषैर्थ्यते इति पुरुषार्थः* - महर्षि मनु | शंकराचार्य का मत है कि पुरुषार्थ-विहीन व्यक्ति धन, मित्र, ऐश्वर्य और कुल होते हुए भी उनसे वंचित रह जाता है। *जीवन लक्ष्य की पूर्णता के लिए मनसा,वाचा,कर्मणा अपनी समस्त सृजित शक्तियों द्वारा उद्यम करना ही पुरुषार्थ है।*-- महर्षि पातंजलि। 'महाभारत' के अनुसार पुरुष का पुरुषार्थ उसके व्यवहार में ही निहित होता है। आधुनिक युग के महान विचारक महर्षि अरविन्द ज्ञान, कर्म और भक्ति के त्रिवेणी-संगम को श्रेष्ठ पुरुषार्थ मानते हैं।

2. धर्म

"धारयति इति धर्मः।" धर्म व्यक्ति और समाज के नैतिक एवं सांस्कृतिक दायित्वों का प्रतिपादन करता है। यह केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और समस्त वसुधा में प्राणी मात्र के लिए महत्वपूर्ण है। यहाँ तक कि वस्तु और

[2] वेदव्यास-महाभारत

पदार्थ भी इससे पृथक नहीं हैं—उनका भी एक 'धर्म' है। उत्पत्ति और नाश का सिद्धान्त इन पर भी समान रूप से लागू होता है। पुरुष-प्रकृति, नर-नारायण, ऋषि-मुनि, राजा-रंक, अमीर-गरीब, दिन-रात, सूर्य-चाँद, ग्रह-नक्षत्र तथा सृष्टि के कण-कण में समान रूप से व्याप्त होने के कारण ही 'धर्म' को पुरुषार्थ चतुष्ठय का प्रधान तत्व माना गया है।

सृष्टि के प्रारंभ से लेकर आधुनिक समाज तक समय-समय पर धर्म को विविध प्रकार से परिभाषित किया गया है। महाभारत, रामायण और गीता में धर्म की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित है। संसार में 'धर्म' को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।(वाल्मीकिय रामायण) इसी में (धर्म में) सत्य की प्रतिष्ठा भी है। धर्म से अर्थ, काम और मोक्ष तक की सिद्धि (प्राप्ति) होती है। धर्म के आधार पर ही मनुष्य और पशु में अन्तर दिखता है अन्यथा भोजन-भजन, शयन, मैथुन आदि अनेक क्रियाएँ दोनों में समान होती हैं।

(पशु और मनुष्य में) धर्म के कारण ही मनुष्य पशु से श्रेष्ठ माना जाता रहा है।

तथाकथित और विकृत धर्म सम्प्रदाय-विशेष का द्योतक हो सकता है, किंतु वह धर्म का वास्तविक स्वरूप नहीं है। विश्व के सभी धर्मों का उद्देश्य मनुष्यता की रक्षा और उच्च मानवीय मूल्यों की स्थापना है। जड़-चेतन, पशु-पक्षी तथा प्राणी विशेष के लिए समान रुपेण उपयोगी और कल्याणकारी कार्य ही धर्म का प्राण तत्व है। विकृत धर्म का दुष्प्रभाव ही आज विश्व स्तर पर राग-द्वेष, हिंसा, शोषण-अविश्वास का ही प्रभाव है कि यत्र-तत्र-सर्वत्र युद्ध-हिंसा का बोलबाला बढ़ता ही जा रहा है। विश्वयुद्ध का बढ़ता हुआ खतरा और सुरसा की तरह मनुष्यता पर हावी होता हुआ आतंकवाद विकृत धर्म की ही उपज है। सनातन संस्कृति का श्रेष्ठ ग्रंथ महाभारत का एक परिवार इसलिए भी टूट कर बिखर गया क्योंकि धर्माचरण का अभाव था। धर्मविरुद्ध आचरण के कारण लंकेश का पतन हुआ। सोने की

लंका राख बन गयी और धर्मयुक्त आचरण के फलस्वरुप श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए। उनका शासन-काल 'रामराज्य' कहलाया। यह भारत का राजधर्म ही था जहाँ राजा प्रजा-हित में प्राणप्यारी प्रिया का निर्वासन कर पुरुषार्थ की रक्षा करते हुए धर्म की पुनर्स्थापना करता है। प्राचीन भारतीय साहित्य और उनमें वर्णित पात्र अपने धर्मानुकूल आचरण के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं।

3. अर्थ

अर्थ पुरुषार्थ का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है, जो धर्म से पृथक नहीं है। जीवन की भौतिक आवश्यकताओं का मूलाधार अर्थ ही है। अर्थ लोक और लोकोत्तर जीवन दोनों को जोड़ने का कार्य करता है। इसके अभाव में पुरुषार्थ की परिकल्पना भी (यहां तक की धर्म की भी) अधूरी है। *मनुष्याणां वृतिः अर्थः।*[3] धन किसी व्यक्ति विशेष का नहीं, अपितु संपूर्ण राष्ट्र का होता है (*यजुर्वेद 40/1*)। अर्थ का संचय (संग्रह) व्यक्ति, सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर भी धर्म रक्षार्थ किया जाता रहा है।

अधर्मपूर्ण ढंग से अर्जित धन व्यक्ति-समाज, राष्ट्र और लोक-परलोक सबका सत्यानाश करता है। अतएव धनार्जन धर्ममय होना आवश्यक है। पाप युक्त संचित-अर्जित धन प्रथमतः हमारे मन-मस्तिष्क, बुद्धि-विचार, आहार-व्यवहार को कलुषित करता है। परिणामस्वरूप मानव कुपथगामी होकर दुर्लभ मानव जीवन को नारकीय बना देता है। अधर्म के मार्ग पर चलकर अर्जित धन जिस तरह प्राप्त होता है उसी प्रकार जाने का मार्ग भी बना लेता है। मानसिक भोग-विलास, व्यसन आपराधिक कृत्य, नशा, घुड़दौड़ विलासपूर्ण भव्य-भवन निर्माण ईंट-पत्थर और अय्याशी में चला जाएगा।(प्रेमचंद-'गोदान')

[3] कौटिल्यीय अर्थशास्त्र

विद्या, सोना, चांदी, धन-धान्य, गृहस्थी की वस्तुएँ, मित्र अर्जन जो कुछ भी मानव तन को प्राप्त है वह सभी पुरुषार्थयुक्त धर्माचरण कर अर्थ प्राप्ति से ही सम्बद्ध है। अतएव इस दुर्लभ धन का अर्जन निश्चितरूपेण धर्ममय ही होना चाहिए। - "*विद्या भूमि हिरण्य पशुधान्य भाण्डोपस्कर मित्रादि नामार्जन मजितस्य विविर्धनमर्थः।*"

4. काम

काम पुरुषार्थ का तीसरा तत्व है। आयातित संस्कृति में 'काम' केवल दैहिक मिलन तक सीमित माना गया है, परंतु सनातन संस्कृति में इसे मोक्ष प्राप्ति का साधन भी माना गया है।

इसकी महत्ता इसी से समझी जा सकती है कि सनातन संस्कृति में इसके भी देवता हैं। यह कामतत्व ही है जिसे उर्ध्वमुखी कर व्यक्ति नर से नारायण बन सकता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इस बात का उल्लेख है कि परमात्मा ने कामना की कि एक से बहुत हो जाएँ।(एकोहं बहुस्याम) सनातन विचारधारा में समग्र वसुधा के सृजनकर्त्ता, अखिल ब्रह्मांड के रचयिता ब्रह्मा जी ही हैं। उन्हीं की कामना से (काम तत्व) संसार का सृजन हुआ है।

A Unit of Tulip Foundation

पौराणिक साहित्य में इस बात का उल्लेख है कि सृष्टि निर्माण में सर्वप्रथम काम की ही उत्पत्ति हुई। "*कामस्तदग्रे समवर्त्ततार्धि* "--ऋग्वेद 10.129.4 पुरुष-प्रकृति, जड़-चेतन, पशु-पक्षी, सुर-असुर, यक्ष-गंधर्व, ऋषि-मुनि के साथ प्राणी मात्र में सामान्य रूप से काम चेतना प्रवाहित होती रहती है। काम की अनेक परिभाषाओं को संक्षिप्तता और समग्रता में समेटते हुए कहा जा सकता है कि मन, वचन और कर्म के साथ-साथ ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों द्वारा जो सुख और आनंद की अनुभूति प्राणी मात्र को होती है उसे काम की

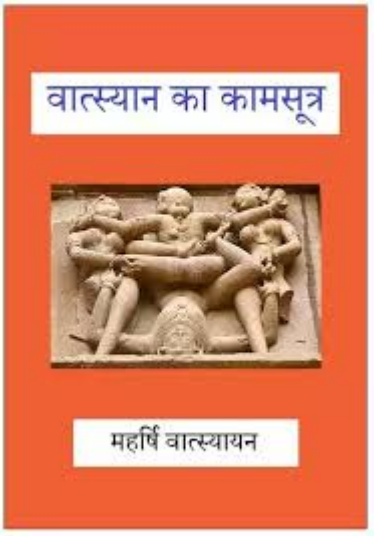

संज्ञा दी जा सकती है। 'काम' मन की वह प्रबल इच्छा (या आवेग भी) है जिसकी सृष्टि के सृजन में भी महत्वपूर्ण भूमिका है। महर्षि वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में काम का सुस्पष्ट विवेचन किया है। काम चेतना भक्ति-प्रेम, पारिवारिक जीवन, साहित्य, कला, संगीत आदि क्षेत्रों में भी व्याप्त रहती है। विकृत काम चेतना पतन की ओर ले जाती है, जबकि पवित्र काम चेतना सृजन, सौंदर्य और शक्ति का आधार है। श्रीराम और श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों ने काम-चेतना को सामाजिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक स्वीकृति प्रदान की। 'सुरसा' की उद्धाम कामवासना इसका उत्तम उदाहरण है। राजा-प्रजा के साथ वैभव, अत्याचार की लंका का नाश वासना का ही प्रतिफल है। धर्म विरुद्ध काम, मोह, वासना, पाप तथा भोगवादी दृष्टि पुरुषार्थ प्राप्ति और जीवन का ध्येय नहीं है। काम की भोगवादी दृष्टि व्यक्ति तथा समाज की दशा और दिशा को विघटन की ओर ले जाती है। अतएव प्रत्येक सभ्य व्यक्ति और समाज तथा राष्ट्र को इसका तिरस्कार करना चाहिए।

5. मोक्ष

मोक्ष पुरुषार्थ का अंतिम और परम उद्देश्य है। जीवन का प्रारंभ धर्म से होकर मोक्ष-प्राप्ति में पूर्णता को प्राप्त करता है। विभिन्न दर्शन अनुसार - न्याय में दुःख नाश, सांख्य में त्रिविध ताप का नाश, चार्वाक में पुण्य-पाप से मुक्ति, उपनिषदों में परम आनंद की प्राप्ति और आधुनिक दृष्टि में मृत्यु के बाद की अवस्था ही मोक्ष है। यह जीवन-मृत्यु की शाश्वत यात्रा से ऊपर उठकर परम तत्व से मिलन और आत्मा-परमात्मा का एकाकार होना है। "*यत्र नन्यः पश्यन्ति नन्यः शृणोति*" [4] दूसरी शब्दावली में बुद्धि, अहंकार और मोहादि से उठने का भाव ही मोक्ष है। ("यदा ते मोह क्लिक बुद्धिव्याति तरिष्यति"-- भगवद्गीता। 2.25)

[4] वृहदारण्यक उपनिषद्

हमारे ऋषि मुनियों और पूर्वजों ने प्राचीन काल से लेकर अद्यतन हिमालय की पवित्र गुफाओं में जाकर वर्षों तक तपस्या कर मोक्ष प्राप्ति की साधना की है। आज भी सिद्ध पुरुष और योगी भौतिक जगत से सुदूर पर्वतों और गुफाओं में साधनारत हैं और दुर्लभ मानव योनि पाकर मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं। मोक्ष जीवन से पलायन नहीं, बल्कि लौकिक जीवन जीते हुए भी प्राप्त किया जा सकता है।

Conclusion (निष्कर्ष)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ मानव जीवन के अभिन्न और परस्पर संबद्ध तत्व हैं। धर्मयुक्त आचरण, धर्मसंगत अर्थ-साधना, पवित्र काम और मोक्ष की साधना से ही जीवन का वास्तविक पुरुषार्थ सिद्ध होता है। धर्म, ज्ञान और आचरण का त्रिवेणी संगम मानव जीवन का पाथेय है। यह विश्वव्यापी सनातन संस्कृति का धर्म ही है जो पशुता से मनुष्यता की ओर ले जाता है। अंधकार से प्रकाश की यात्रा कराता हुआ जड़ वस्तु में भी चैतन्य के दर्शन कराता है। आज के भौतिक युग में भी ये मूल्य प्रासंगिक हैं। इनके पालन से समाज, राष्ट्र और मानव जीवन में संतुलन और पूर्णता प्राप्त की जा सकती है। यदि इन्हें उच्च मानवीय मूल्यों और श्रेष्ठ जीवन शैली से जोड़कर आगे बढ़ाया जाए, तो एक ऐसा विश्व सृजित हो सकता है जहाँ कोई अधार्मिक, अर्थहीन और ऊर्ध्वमुखी कामना से वंचित न रहे। यही विश्व संस्कृति की मोक्ष प्राप्ति होगी।